 ISSN : 2347-7660 (Print) | ISSN : 2454-1818 (Online)

नासिरा शर्मा की कहानियों में स्त्री–विमर्श

डॉ. सुषमा सहरावत,

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

स्त्री–विमर्श नासिरा जी की कहानियों के केंद्र में है। उन्होनें व्यापक धरातल पर अपनी कहानियों के माध्यम से स्त्री स्वर को वाणी प्रदान की है। उनके द्वारा लिखित 'शामी कागज', 'पत्थर गली', 'संगसार', 'इब्ने मरियम', 'सबीना के चालीस चोर' तथा 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' नामक कहानी संग्रह स्त्री–विमर्श के विविध आयामों को सफलतापूर्वक हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

स्त्री–विमर्श को मैं स्त्रियों से सम्बद्ध एक ऐसी वैचारिकी, एक ऐसा चिंतन–मनन मानती हूँ जो स्त्रियों को हर प्रकार के शोषण, रूढ़िगत मान्यताओं एवं परम्पराओं के नाम पर उनके साथ किए जाने वाले अन्याय के खिलाफ जागरूक कर उन्हें उनकी स्वतंत्र अस्मिता की पहचान कराता है। इसका अर्थ पुरुष वर्चस्व के खिलाफ स्त्री वर्चस्व को स्थापित करना कदापि नहीं है और न ही यह पुरूषों के विरुद्ध चलाये जाने वाला कोई अभियान है बल्कि समाज में स्त्री को समान दृष्टिकोण व समान व्यवहार की अधिकारिणी समझे जाने की दिशा में किया जाने वाला प्रयास है। स्त्री जाति आज भी अपनी अस्मिता स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही है। यह जरूर है कि इक्कीसवीं शती की स्त्रियाँ अब 'अबला' नहीं हैं। आज वह किसी भी क्षेत्र में अपनी सफलता के परचम लहरा रहीं हैं। सरकार ने भी स्त्री–सशक्तिकरण की दिशा में काफी सराहनीय प्रयास किए हैं किंतु यह भी कटु सत्य है कि आज भी घरेलू और बाहरी स्तर पर महिलाओं को अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ रहा है। पुरूष प्रधानता की जड़ें आज भी अधिकांश पुरूषों की मानसिकता में गहरे पैठीं हैं। हर क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी बढने के बावजूद अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिए उन्हें बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड रहा है। स्त्री विमर्श का लक्ष्य स्त्री को उसके अधिकारों के प्रति सचेत करते हुए उसे उसके अस्तित्व की पहचान कराना है। इस दिशा में महिला कथाकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है जिन्होंने स्त्री–विमर्श को अपनी कथाओं का आधार बना नारी को उसके अस्तित्व से रूबरू करवाया है। इन महिला कथाकारों में नासिरा शर्मा का योगदान अक्षुण्ण है। 1948 में इलाहाबाद में जन्मीं नासिरा जी ने हिन्दी कथा साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। उन्होनें व्यापक धरातल पर अपनी कहानियों के माध्यम से स्त्री स्वर को वाणी प्रदान की है। हिन्दी, उर्दू ,फारसी, अंग्रेजी और पाश्तो भाषाओं में निपुण नासिरा जी का लेखन क्षेत्र सीमित न होकर अत्यंत विस्तृत रहा है। उनके द्वारा लिखित 'शामी कागज', 'पत्थर गली', 'संगसार', 'इब्ने मरियम', 'सबीना के चालीस चोर' तथा 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' नामक कहानी संग्रह स्त्री–विमर्श के विविध आयामों को सफलतापूर्वक हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। चूंकि नासिरा जी स्वयं मुस्लिम समाज

में पली बढी हैं इसलिए मुस्लिम जीवन और संस्कृति उनकी कहानियों में पूर्णरूपेण उभर कर सामने आयी है। उन्होनें स्वयं कहा है कि ''मुस्लिम समाज सिर्फ 'ग़ज़ल' नहीं है बल्कि एक ऐसा 'मर्सिया' है जो वह अपनी रूढिवादिता की कब्र के सिरहाने पढता है। पर उसके साज़ और आवाज़ को कितने लोग सुन पाते हैं और उसका सही दर्द समझते हैं? ये कहानियाँ उस समाज और परिवेश की हैं जो वास्तव में पत्थर गली है, जिसे तोड़ना आसान नहीं। मगर एक छटपटाहट है निकास—द्वार ढूँढने की और ये कहानियाँ उसी की तस्वीर पेश करती हैं। असल में, चाहे मुस्लिम समाज की स्त्रियाँ हों या फिर हिन्दू, ईरान, ईराक, पाकिस्तान या अफगानिस्तान की स्त्रियाँ, नासिरा जी ने सभी धर्मों, जातियों और समुदायों की स्त्रियों की भावनाओं को अपनी कहानियों के माध्यम से वाणी प्रदान की है। उन्होनें स्त्री—पीड़ा को उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं और सपनों को अपनी कहानियों की शक्ल देकर बखूबी पाठक के समक्ष चित्रित कर दिया है। वह कहती भी हैं कि 'अहसास' से उपजी पीड़ा को मैं इंसान की व्यक्तिगत पूँजी समझती हूँ, मगर हालात की मार से मिली व्यथा को कई इंसानों के कर्मों का फल मानती हूँ।'' खास बात यह है कि नासिरा जी की कहानियाँ स्त्री—विमर्श के संदर्भ में न केवल स्त्री जीवन के विविध स्वरूपों का चित्रण करती हैं बल्कि साथ ही नारी स्वतंत्रता की एक अलग पहचान भी समाज में स्थापित करती हैं।

'पत्थर गली' में संकलित कहानी 'बावली' पूर्णतः एक स्त्री चेतना प्रधान कहानी है। लेखिका ने 'बावली' के प्रतीक द्वारा स्त्री के वजूद की परख की है। जिस तरह पानी से सराबोर बावली सबकी प्यास बुझाती है, चिलचिलाती धूप में पक्षियों को अपनी दीवारों के शीतल दरों में पनाह देती है और अपना वजूद भूलकर सबमें अपने को बाँटती रहती है किंतु उसका साथ निभाने वाला कोई नहीं होता है। उसे तो हमेशा ''अकेले, तन्हा आसमान के नीचे जमीन के सीने में धसे हुए जीना है।''[3] लेखिका ने सलमा के माध्यम से स्त्री जीवन के एक ऐसे पहलू पर प्रकाश डाला है जहाँ स्त्री का वजूद उसके माँ बनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगाया जाता। सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी यदि स्त्री बंध्या है तो यह उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है।विवश स्त्री अपमान के कड़वे घूँट पीकर रह जाती हैं। इस कहानी की नायिका सलमा के जीवन में ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब शादी के सात वर्ष उपरांत भी वह संतान—सुख पाने में असफल रहती है। अति तो तब होती है जब उसकी सास उसपर अपने ही मियाँ खालिद पर दूसरे निकाह के लिए दबाव डलवाकर उसे राजी करवा लेती है। हालत यह हो गई थी कि ''बच्चे का मुहँ देखने के लिए अम्मा हर रोज़ बेचैन होती थीं। खालिद पहले अम्मा की बात पर गुस्सा हो जाते थे, फिर चिढ़ने लगे, फिर खामोश... और कुछ दिन बाद उनके ख्यालात भी बदल गये थे। जब मोहब्बत का गुरूर टूटता है तो फिर उसमें रह क्या जाता है? ''कहानी का 'क्लाइमेक्स' अत्यंत नाटकीय मोड़ लिए हुए है। उधर खालिद मियाँ दूसरा निकाह कर अपनी नई बेगम को कार में लेकर एक बड़े होटल के शानदार कमरे में रात बिताने के लिए रूखसत होते ही हैं और उधर सलमा चक्कर खाकर बेहोश हो जाती है। पता चलता है कि सलमा 'हामला' है। यहाँ यह बात प्रखरता से उभरकर सामने आती है कि यदि स्त्री संतान सुख दे पाने में असमर्थ है तो पुरूष दूसरा विवाह करने में तनिक संकोच नहीं करता किंतु यदि पुरूष संतानोत्पत्ति नहीं कर सकता तो क्या स्त्री भी ऐसा ही करती है? उत्तर हम सब जानते हैं। सलमा के इन शब्दों में उसकी यह पीड़ा साफ झलकती है जब वह कहती है कि, ''मैं पानी—से भरी बावली रिश्तों के नाम पर बँटती आई। हमेशा दिया, लिया कुछ नहीं। आज जब अपनी कोख से एक बच्चा न दे सकी, तो मैं एक बेकार शै मान ली गई। मेरा ओर खालिद का

रिश्ता एक औलाद को लेकर टूट गया। अगर खालिद मेरी गोद न भर पाते तो क्या मैं दूसरी शादी करती? उस समय गोद लेने की बात उठती! तो औरत के नाम के साथ क्या मर्द कुर्बानी नहीं कर सकता है? किसी भी स्त्री के लिए यह अत्यंत पीड़ादायक स्थिति है कि उसके रहते उसका पति किसी अन्य औरत के साथ निकाह कर उसी घर में उसके ही समक्ष मोहब्बत साझा करे। अपनी मोहब्बत को बँटते हुए देखना सलमा के लिए भी सरल नहीं होता। इसी संभावित पीड़ा को महसूस करते हुए वह सोचती है कि ''सुहेला मेरी सौत बनकर क्या जुल्म, क्या कहर ढाएगी मुझ पर, खालिद का बर्ताव कैसा होगा? क्या मैं खालिद को बँटते देख पाउँगी?'' वैसे तो हम इक्कीसवीं सदी में पहुँच गए हैं लेकिन क्या हमारा समाज उतना आधुनिक हो पाया है जितना कि उसे इक्कीसवीं शती में हो जाना चाहिए था? आज भी कभी समाज, कभी खानदान तो कभी वंश–परम्परा की दुहाई देकर औरत को ही बलि का बकरा बनाया जाता है, औरत से ही ये अपेक्षा की जाती है कि वह दूसरों की खुशी का ख्याल रखेगी किंतु उसकी खुशी, उसकी ख्वाहिशें, उसके सपने,उसके अरमान क्या कुछ भी मायने नहीं रखते? कहानी की विशेषता यह है कि इसमें लेखिका ने संतानहीन स्त्री की पीड़ा को केवल वाणी ही प्रदान नहीं की है बल्कि स्त्री चेतना को भी उभारा है। सलमा एक कमजोर स्त्री के भावुक क्षणों से उबरकर एक सबल एवं मजबूत व्यक्तित्व की स्वामिनी के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई है। 'चौथे रास्ते' पर चलने का निर्णय करना वाकई एक सबल व्यक्तित्व का परिचायक है। सलमा निर्णय करती है कि ''क्यों न मैं चौथा रास्ता चलकर देखूं? तन व तन्हा, जब हर रिश्ता झूठा है, हर रिश्ता कहीं जाकर टूट जाता है तो फिर यह आडम्बर पालने से फायदा? कल सुहेला का भ्रम टूट गया तो? शादी के बाद मैं यह घर छोड़ दूंगी। क्या होगा यहाँ रहकर? अपने घर में छोटी होने के नाते कुछ मिला नहीं। यहाँ बीवी बनकर भी सिर्फ आध मियाँ की हकदार और शायद.. कल वह भी न हो।... मैं अम्मा के साथ देहात में रहूँगी। वहाँ भी दिल न लगा तो कुछ और सोचूंगी।'' उसके इस दृढ़ फैसले का ही नतीजा था कि सलमा की आँखों से आज की रात एक बूंद भी ऑसू नहीं गिरा और हफ्तों बाद वह सो सकी। सलमा के व्यक्तित्व की दृढ़ता तब और प्रखरता से सामने आती है जब कहानी के 'क्लामेक्स' में उसके गर्भवती होने की बात पता चलती है किंतु तब भी सलमा का निर्णय अटल ही रहता है। गर्भवती होने के उपरांत वह चाहती तो अधिकारपूर्वक उसी घर में रह सकती थी किंतु उसे बँटवारे का रिश्ता मंजूर न था। अब वह अपनी जिंदगी अपनी तरह से जीने का निर्णय ले चुकी थी। इसीलिए खालिद अपनी नई बेगम सुहेला के साथ सुहागरात मनाने के उपरांत जब सुबह सलमा के पास आता है तो हालांकि ''दर्द का एक अजीब लावा उसके अन्दर तड़पने लगा मगर उठी हुई आँखों में एतमाद था। चौथे रास्ते की तरफ बढ़ने की रोशनी, मगर तन्हा नहीं। एक नए रिश्ते के नाम पर ज़िंदगी के नए सफर पर चल पड़ने का मूक अनुबंध था।'' वस्तुतः सलमा द्वारा चौथे रास्ते को चुनने का निर्णय उसके स्वावलम्बी स्वभाव आत्मसम्मान एवं जाग्रत व्यक्तित्व का परिचायक है। सलमा एक आधुनिक एवं चेतनायुक्त स्त्री के रूप में सामने आई है।

नासिरा जी की अन्य सुप्रसिद्ध स्त्री केंद्रित कहानी है 'दिलआरा'। इस कहानी में लेखिका ने एक ओर जहाँ मौलाना अकरम जैसे मौलवियों के स्त्री विरोधी फतवों की खिलाफत की है वहीं साजदा बेगम और दिलआरा के माध्यम से स्त्री–स्वातंत्र्य की पैरवी कर उनका पक्ष रखा है। इसके अतिरिक्त इस कहानी में लेखिका ने विधवा जीवन की समस्याओं पर विचार करते हुए उन्हें भी इंसान समझे जाने की बात कही है। नासिरा जी ने साजदा बेगम द्वारा यह सवाल उठाया है कि क्यों प्रत्येक समाज में विधवा स्त्री को हीन

निगाहों से देखा जाता है? क्यों उसे लाचार समझ उस पर तरस खाया जाता है? गुलशन जैसी औरतें लगातार यह एहसास कराना नहीं भूलतीं कि ''सुहाग भी क्या चीज़ होती है पूरी दुनिया रंगीन नज़र आती है।... या खुदा मुझे सुहागिन ही उठाना, ऐसा दिन कभी न दिखाना।'' ऐसी औरतें विधवा स्त्री को लाचार व मजबूर समझती रहती हैं और बजाय उनका हक दिलवाने के उन्हें अपनी उतरन देने में बिल्कुल देर नहीं करती, बिना यह जाने–समझे कि आखिर उसे उन चीजों की ज़रूरत है भी या नहीं? इसीलिए साजदा कहती है – ''बौरा गयी है सूखे मेवे वाली गुलशन, मुझे फकीरन समझ पुराने कपड़े भेजे हैं। अरे इतना बड़ा दिल है तो मुसाफिरखाना खोलो, फकीरों के लिए घर बनवाओ, लंगर खुलवाओ, हर साल दस–बीस गरीबों की लड़कियों की डोली उठवाओ। मगर जनाब यह न होगा, बस घर का कूड़ा साफ हो इसलिए नेकी कर दी।'' सच तो यह है कि आज कहने को भले ही हम आधुनिक समाज में जी रहे हैं और विधवाओं की स्थिति भी पहले की बनिस्पत काफी सुधरी है किंतु क्या सामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन आया है? क्या अब विधवा स्त्रियों को सामाजिक तीज–त्यौहारों, रीति–रिवाजों का हिस्सा बनने का हक दिया जा रहा है? उन्हें सम्मिलत भले ही किया जाता हो परंतु उसका 'हिस्सा या भागीदार' उन्हें अभी भी नहीं बनाया जाता है। आज भी शादी–ब्याह या किसी भी मांगलिक अवसर पर सुहागिन स्त्रियों के हाथों ही शुभ कार्य करवाये जाते हैं, मानो विधवा हो जाने से वह स्त्री अशुभ हो गई हो। फिर विधुर पुरूष क्यों अशुभ नहीं माना जाता? उसके साथ तो कोई भेदभाव नहीं होता। वह तो पहले की ही भाँति सामान्य जीवन जीता है। स्त्री के प्रति समाज में इन दोहरे मापदण्डों को देख मन विक्षोभ से भर उठता है खैर, नासिरा जी ने इस कहानी में साजदा बेगम को लाचार या अशक्त विधवा स्त्री के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। यहाँ साजदा बेगम चेतनायुक्त एक ऐसा सशक्त स्त्री चरित्र है जो नितांत अकेली रह जाने के बावजूद पुनः शक्ति अर्जित कर जीवन–संघर्ष हेतु उठ खड़ी होती है। विपरीत परिस्थितयों में टूट कर बिखर जाने की अपेक्षा वह स्वनिर्णय से जीवन का उद्देश्य निर्धारित कर जीवन मार्ग पर दृढ़ता से बेखौफ आगे बढ़ती है। वह निश्चय करते हुए कहती है कि ''अब एक बार फिर जरूरत है कुछ कर दिखाने की, जो है उससे आगे बढ़ने की... वरना तुझे बेवा कह–कहकर लोग तेरा जीना हराम कर देंगे।'' साजदा बेगम लड़कियों को मुफ्त शिक्षा देने के लिए मदरसा खोल मोहल्ले पर हुकूमत करने वाले मौलवी अकरम को एक तरह की चुनौती दे देती है। मौलाना द्वारा साजदा को कई बार धमकाने तथा लोगों में उसके खिलाफ दुष्प्रचार करने के बावजूद भी साजदा बेगम मदरसे में लड़कियों को उनके हक के प्रति जागरूक करना नहीं छोड़ती। यहाँ तक कि जब मौलाना स्वयं साजदा बेगम के घर उन्हें मदरसा बंद करने की सलाह देने आ पहुँचते हैं तो भी वह नहीं डरती और साफ तौर पर बहस कर उन्हें कह देती है कि ''बात औरत को बाहर निकालने या मरद के मुकाबिल खड़ा करने भर की नहीं है बल्कि उसे एक इंसान समझकर उसकी पूरी शख्सियत की है। उसको वह सारे हक़ मिलने चाहिए जिससे वह अपनी दिमागी और जज़्बाती जरूरतों को पूरी कर सके और एक सेहतमंद नजरिए के साथ वह इस दुनिया के हर फैसले में शामिल हो सके। मगर आप तो वह हक़ भी नहीं देना चाहते हैं जो उसे चौदह सौ साल पहले मिल चुके हैं, बस उसके लिए रूहानी तौर पर तहखाने–दर–तहखाने तैयार किए जाते हैं।'' साजदा बेगम यहाँ एक लाचार विधवा की अपेक्षा सुदृढ़ व्यक्तित्व वाली स्त्री के रूप में उभरी है। यही इस कहानी की सफलता भी है जो स्त्री को टूटने की बजाय जुड़ने का संदेश देती है और बताती है कि आज स्त्री इतनी कमजोर नहीं है कि व्यंग्य–बाणों से आहत होकर अपनी जिजीविषा का परित्याग कर दे। इस कहानी में लेखिका ने

दिलआरा नामक स्त्री–पात्र की सृष्टि उन तमाम मुस्लिम लड़कियों को वाणी प्रदान करने हेतु की है जो अपने हकों से अनजान रहकर अपने अरमान दिल में ही दबाए रखती हैं किंतु जब उन्हें शरीयत और रवायतों की मालूमात हो जाती है तो अपने ढंग से अपनी जिंदगी जीने के लिए विद्रोह पर उतर आती हैं। अमीर घराने की दिलआरा गरीब जमाल से इश्क कर बैठती है। साजदा बेगम के मदरसे में शरीयत के बारे में जानते–समझते हुए जल्द ही ''उसे इस बात का अहसास हो चला था कि उसको दीन मजहब ने अपने बारे में फैसला लेने का हक़ दे रखा है। फिर वह अपने दिल की बात मान सकती है। यह गुनाह नहीं बल्कि उसका हक़ है। एक कली चटखी और उसके चेहरे पर एक दिलकश मुस्कान खुशबू की तरह फैल गयी।'' गरीब जमाल जिसका अपना कोई घर–ठिकाना तक नहीं है दिलआरा से शादी न कर सकने की अपनी मजबूरी साजदा बेगम के सामने जाहिर कर देता है किंतु दिलआरा जिसे कि अब अपने हक़ मालूम हो गए थे 'घर में तूफान मचाकर इन्कलाब का परचम लहरा देती है।' वह अपनी ज़िद पर अटल रह स्पष्ट कर देती है कि जिसे वह पसंद करती है शादी भी उसी से करेगी और जिसे वह पसंद ही नहीं करती उससे भला शादी क्यों करे?

नासिरा जी ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'पत्थर गली में मुस्लिम समाज के रूढ़िवादी जड़ परिवेश का चित्रण किया है और दिखाया है कि मुस्लिम लड़कियाँ अपनी स्वतंत्र अस्मिता के लिए किस तरह भीतर–ही–भीतर घुटती रहती हैं तथा उस दमघोंटू परिवेश से बाहर निकलने के लिए कसमसाती रहती हैं। इस कहानी में लेखिका ने फरीदा जैसे सशक्त नारी–चरित्र की सृष्टि की है जो मुस्लिम समाज की सड़ी–गली मान्यताओं को स्वीकार करने की अपेक्षा अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है। जब रूढ़ियाँ और विकृतियाँ असहनीय हो जाती हैं तब वही फरीदा जिसके शांत व सुशील व्यवहार की पूरा मोहल्ला मुक्त कंठ से प्रशंसा किया करता था,अचानक उसके व्यवहार में तल्खी आ जाती है और वह अपने आवारा बड़े भाई की ज्यादतियों के खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत कर कह देती है– ''पठान, जो सीने पर चढ़कर अपना कर्ज वसूलते हैं, आप तो उससे भी गये–गुजरे हैं। सीने पर चढ़कर दूसरों का खून चूस रहे हैं।'' इस घटना के उपरांत फरीदा पर जैसे कहर ही टूट पड़ता है किंतु वह हार नहीं मानती। अपने मन की भड़ास निकालने के लिए सलमा की तरह अंधविश्वास का सहारा नहीं लेती। वह चिल्ला–चिल्लाकर स्पष्ट कह देती है कि ''नहीं...नहीं, मैं उस लड़की में नहीं ढ़लना चाहती हूँ जो अपना रास्ता किसी बेकार सहारे से बनाये – मैं... नाहीद नहीं बनूँगी, जुलेखा बाजी की तरह चचा से गलत रिश्ता कायम नहीं करूंगी... खुदैजा की तरह भी नहीं... मुझे आज़ादी दो... मुझे फरीदा बनने दो... मुझे मेरी तरह जीने दो... मुझ पर रहम खाओ... मुझे सारी जंजीरों से, इस कैद से आज़ाद कर दो... मुझे आज़ाद कर दो.. आज़ाद?'' दरअसल, देखा जाए तो, फरीदा के इस विद्रोही स्वभाव के पीछे कोई एक घटना नहीं है बल्कि समाज एवं परम्परा के नाम पर हमेशा लड़कियों के साथ किए जाने वाले भेदभाव व रोकटोक का लावा है जो अंततः फूट पड़ता है। वह रोज़ स्कूल जाना चाहती है पर घर के कामों का हवाला देकर जब–तब उसे रोक दिया जाता है, स्कूल के नाटकों में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने वाली फरीदा जब कलाकेंद्र के नाटक में हिस्सा लेना चाहती है तो खानदान की बदनामी के नाम पर उसे रोक दिया जाता है, डिबेट करना चाहती है तो लड़कों की उपस्थिति के चलते उसे मना कर दिया जाता है। ऐसी ही अनेक पाबंदियों के चलते फरीदा जैसी लड़कियाँ अपने सपनों को दम तोड़ते देख विद्रोही स्वभाव की हो जाती हैं और अपना मानसिक संतुलन खो बैठती हैं। कहानी का अंत त्रासदायक है। फरीदा की स्वतंत्र व्यक्तित्व की इच्छा उसे अंततः पागलखाने पंहुचा देती है क्योंकि रूढ़िवादी

मुस्लिम समाज में अपनी स्वतंत्रता हेतु लड़कियों द्वारा किया जाने वाला विद्रोह कोई मायने नहीं रखता। पागलखाने में फरीदा की हालत बयान करतीं नासिरा जी की इन पंक्तियों में कितनी पीड़ा छुपी हुई है–''घर के नाम से फरीदा को दौरे पड़ते हैं, वरना देखने से लगता है फरीदा यहाँ खुश है, चेहरे पर शान्ति है, जो कह रही है–कम–से–कम मैं, मैं तो हूँ यहाँ।'' फरीदा के अतिरिक्त इस कहानी में लेखिका ने नजमा, नाहीद, खुदैजा, शकीला, सालेहा, जैसे स्त्री–पात्रों की भी रचना की है। इन सभी पात्रों द्वारा लेखिका ने बंधनमुक्त होने की चाह को अभिव्यक्ति दी है और दिखाया है कि कैसे इन नवयुवतियों के कोमल सपने, इच्छाएँ व भावनाएँ उड़ान भरना चाहते हैं किंतु हर तरफ से अपने को जंजीरों में जकड़ा महसूस करते हैं, पंख फैलाकर खुले आसमान की सैर करना चाहते हैं किंतु तभी ज्ञात होता है कि पंख तो हैं ही नहीं, पहले ही कतर दिए गए हैं। यही कारण है कि अंधविश्वास का त्रासद रूप भी यहाँ देखने को मिलता है। सलमा सरीखी लड़कियाँ अपने उपर जिन्नात आने जैसे अंधविश्वासों का सहारा लेकर अपने मन की भड़ास निकालती हैं। कुल मिलाकर यह कहानी मुस्लिम परिवेश में व्याप्त रूढ़ियों, विसंगतियों और परम्पराओं के चलते फरीदा, सलमा, जुलेखा जैसी उन लड़कियों के प्रति हमारी संवेदनाओं को जगाती है जो कट्टरपंथी मुस्लिम समाज की परम्परागत मान्यताओं को छोड़कर स्वतंत्र मार्ग चुनने का साहस करती हैं।

'ताबूत' कहानी के माध्यम से नासिरा जी ने रूपहीनता की त्रासद स्थिति को प्रस्तुत किया है। फहमीदा, हुमैरा और सायरा तीनों बहनों को रूपहीनता, उँचे खानदान के दंभ तथा अपने पिता के निठल्लेपन के कारण अविवाहित रह जाने का दंश झेलना पड़ता है। सच तो यह है कि ''अपनी बदसूरती का अहसास तीनों को अपनी गरीबी और बदहाली से कहीं अधिक था।... रात–भर मन्नतों , मुरादों के बावजूद वे तकदीर का लिखा मिटा न सकीं और न दिन में बाप के कोसने से अपने को आज़ाद कर सकीं। उनके हाथ चलते थे, ऑखें घूमती थीं। उम्मीद का कोई सितारा ज़िन्दगी में नहीं टिमटिमाता था। बस जिन्दगी की गाड़ी किसी तरह खिंच रही थी। उस गाड़ी के पहिये बनकर उनका ज़ोर आगे बढ़ने पर लगा हुआ था। यदि उनसे कोई पूछता कि ज़िन्दगी क्या है, तो वह तीनों जवाब देतीं – रोटी, हाथ और बीड़ी!'' यह सच है कि सौंदर्य–बोध मानव संस्कार में निहित है और प्रत्येक प्राणी सौंदर्य के प्रति आकृष्ट होता है परंतु समाज अपनी उथली दृष्टि के कारण बाहरी व्यक्तित्व को ही सौंदर्य का प्रतिमान स्वीकार कर लेता है। इसी कारण फहमीदा, हुमैरा और सायरा जैसी युवतियाँ अन्तर्मन से सुंदर होते हुए भी अपनी शारीरिक कुरूपता के कारण सामाजिक दृष्टि से स्वयं को अयोग्य पाती हैं। धीरे–धीरे उनमें एक कुंठा, एक संत्रास समा जाता है। हीनता–ग्रंथि उनके मन मस्तिष्क को आप्लावित करते हुए उनकी जीवन–शैली को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। यहाँ तक कि आईना देखना भी उन्हें व्यर्थ का क्रियाकलाप लगने लग जाता है। फहमीदा अपनी अम्मी से कहती है ''इस मुहँ में रखा ही क्या है जो आइना देखे? सालों गुजर गये हैं उसे आईना देखे। कंधी भी अंदाजे से सधे हाथों से कर लेती है। और फिर चेहरे को क्या सजाना है? बनानेवाले ने ही जब इतनी कंजूसी बरती है तो फिर बन्दा उसके काम में क्या दखल दे?'' कहानी के अंत में परिवार और समाज की घूरती नजरों, उपेक्षा व अपमान के चलते फहमीदा निरन्तर जर्जर होती हुई मृत्यु को प्राप्त हो जाती है और उसका 'ताबूत' उठता है। वस्तुतः यह ताबूत प्रतीक है उन तमाम रूपहीन लड़कियों की इच्छाओं, आकांक्षाओं और सपनों का जो कभी फलीभूत नहीं हो पाते और ताबूत में बंद होकर दफन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस कहानी में स्त्री जीवन के अन्य रूपों को भी अभिव्यक्ति मिली है, जैसे, शारीरिक भूख की प्राकृतिक इच्छा

को दबाती स्त्री की झलक तीनों रूपहीन बहनों में तो दिखती ही है, सोलह वर्षीय खातून तथा भरी जवानी में विधवा हुई खाला बी के चरित्र में भी दिखलाई पड़ती है। उदाहरणतया, ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं – ''खाला बी ज़ख्मी थीं। सारी उम्र जोगन की तरह काट ली थी। बदन की भूख का अहसास... चन्दन–सा बदन राख कर लिया था। जाड़े की रातों को रो–रोकर काटा था, मगर क्या मजाल की'' इसी भूख की परितृप्ति हेतु खातून जैसी किशोरवया अधेड़ सादुल्ला के साथ रिश्ता कायम कर लेती है। प्रेम पाने और शारीरिक परितृप्ति की लालसा तीनों रूपहीन बहनों में भी है और इसीलिए खातून जैसी लड़कियों की हिम्मत देखकर वह भी सब कुछ महसूस करना चाहती हैं। फहमीदा के इन शब्दों में यह लालसा स्पष्ट देखी जा सकती है जब वह सोचती है कि ''खातून पागल सही, खाला बी गुस्सा सही, मगर यह कैसी रौनक है, जो पहले कभी खातून के चेहरे पर नज़र नहीं आयी थी? ज़िन्दगी क्या सचमुच बदलाव चाहती है? बदलाव ही ज़िन्दगी है, वरना ठहरा पानी तो सड़ जाता है। क्या हमारी ज़िन्दगी सड़ा पानी है? अगर हरकत ही ज़िन्दगी है तो हमारी ज़िन्दगी में हरकत की जगह एक सन्नाटा है, जैसे वक्त की चाल ठहर गयी हो। उसमें कोई आवाज़ नहीं, कोई पुकार नहीं। बस एक ठहराव है। मौत भी तो इसी ठहराव का नाम है। तो फिर क्या हम तीनों मुर्दा हैं?'' पुत्र–लालसा के प्रति भी इस कहानी में सवालिया निशान लगाया गया है। तीनों रूपहीन बहनों की दयनीय स्थिति के पीछे उपर्युक्त कारण तो थे ही, उनके निठल्ले पिता कासिम अली की पुत्र–प्राप्ति की बलवती इच्छा भी एक अहम वजह थी। बेचारी तीनों बेटियाँ कमाउ पूत बनने की कोशिश में अपने जीवन का सुख–चैन खो चुकीं थीं किंतु फिर भी कासिम अली उन्हें दिन–रात कोसता ही रहता था। हाल यह था कि ''हाय–हाय के बीच में हमेशा लड़के की कमी उन्हें खलती रहती थी और खुदा से कहते थे कि 'तेरी नगरी में यह कैसा अंधेर है? एक बाप की गोद लड़के से खाली रखी! उनके घर आया कोई नया जब पूछता तो कहते – फिर यह तीन लड़कियाँ? जवाब देते–वह तीनों बीवी की औलादें हैं, लड़का होता तो मेरी औलाद होता।''

'इब्ने मरियम' कहानी अत्यंत ह्रदयविदारक है जिसमें नासिरा जी ने कुबरा और सुगरा द्वारा परित्यक्ता स्त्री की पीड़ा को तो दर्शाया ही है, साथ ही भोपाल गैस कांड की त्रासदी का भी अप्रत्यक्ष चित्रण किया है। दोनों बहनों का निकाह हो जाने के बावजूद वे परित्यक्ता का जीवन जीने को बाध्य हो जाती हैं। कभी शानदार बटुओं की दुकान के मालिक रहे उनके पिता ताहिर इस सदमें से पागल हो इधर–उधर भटकते रहते हैं और दोनों बहनें मुफलिसी के दिन गुजारने को मजबूर हो जाती हैं। हालत यह थी कि ''कुबरा और सुगरा के लिए अब दुनिया अँधेरी हो चुकी थी। शौहर के दरवाजे उन पर बंद हो चुके थे। बाप ने दिमाग की खराबी की वजह से पहचानने से इंकार कर दिया था। वक्त की इस मार से ज़माने ने भी आँखें फेर ली थीं। अब दोनों लड़कियों के सामने सवाल गम मनाने का नहीं बल्कि पेट की दोज़ख भरने का था।'' दोनो बहनें पिता की बंद दुकान को चलाना चाहती हैं किंतु रूढ़िवादी मुस्लिम समाज उन्हें इसकी इजाजत नहीं देता। नासिरा जी ने इसका विस्तृत चित्रण करते हुए प्रश्न उठाया है कि ये कैसा समाज है जो दो बेसहारा लड़कियों को भूखा मरता तो देख सकता है किंतु उनकी किसी परेशानी का हल नहीं सुझाता और यदि वे स्वयं अपनी मदद करना चाहें तो वही समाज परम्पराओं के नाम पर उन्हें जीने भी नहीं देना चाहता। इस कहानी में भोपाल गैस कांड के दुष्परिणामों का प्रत्यक्ष चित्रण तो लेखिका ने नहीं किया है किंतु सुगरा व कुबरा के जीवन की त्रासदी के पीछे इस गैस कांड को प्रमुख कारण के तौर पर प्रस्तुत अवश्य किया है। दोनों बहनों की शादी अमीर घरानों में की गई थी परंतु गैस रिसाव के बाद ससुराल वालों ने उन्हें

अपनाने से यह कहकर इंकार कर दिया कि कहीं इनकी औलादें भी लंगड़ी–लूली पैदा न हो जायें। भोपाल गैस कांड वाकई एक भयंकर त्रासदी थी जिसके जख्म आज तक भी नहीं भरे हैं। यह कहानी हमें सोचने को विवश करती है कि इस त्रासदी के उपरांत एक इंसान दूसरे पीड़ा को समझ उसपर मरहम लगाने की बजाय उसके दर्द का कारण कैसे बन गया।

'सिक्का' नासिरा जी द्वारा लिखित एक ऐसी कहानी है जो स्त्री के प्रेम–दर्शन को काव्यात्मक दृष्टिकोण से अभिव्यक्ति प्रदान करती है। इसमें सूत्रधार 'मैं' नामक स्त्री है जो प्रारंभ से अंत तक प्रेम के प्रति स्त्री के दृष्टिकोण को उजागर करती चलती है। 'सिक्का' यहाँ इश्क का प्रतीक है। स्त्री के लिए इश्क सोने के खरे सिक्के के समान है जिसे अपने स्वार्थ हेतु भूनाना उसे नहीं आता किंतु पुरूष के लिए यह सिक्का नफे–नुकसान का सौदा है। इन पंक्तियों में स्त्री की पीड़ा छलकती है–''तुमसे मेरा रिश्ता औरत–मर्द का अबदी अमर रिश्ता था, जिसे मैं हर स्तर पर जीने का हौंसला रखती थी, मगर तुम दुनिया में कुछ बन जाने के नशे से सराबोर थे... भौतिक दुनिया की साज–सँवार से जब तुम्हें फुर्सत मिलती तब मेरे समीप आकर थम जाते थे। वही समय तुम्हारी नज़रों में चाहत थी वरना समय का इतना–सा टुकड़ा भी तुम दुनियावी मसलों के हल में खर्च कर देते, यूँ मेरे साथ न गुजारते।'' इसी तरह, ''तुम इश्क की धरती से उखड़ा एक ऐसा दरख्त हो जो धरती के लाख उर्वर होने पर भी दोबारा जम नहीं सकता है। तुम जड़ की गहराई पर नहीं शाख के फैलाव पर विश्वास करते थे। तुम्हें इश्क की लज्जतों की परवाह न थी बल्कि दौड़–भागकर अपना सिक्का जमाने में मज़ा आता था। मैं उसी मज़े की कड़ी–भर थी। इस कड़ी को तुम प्यार कहते थे। तुम प्यार के जिस स्तर पर खड़े थे, वह मेरी सम्वेदनाओं की पहली सीढ़ी भी न थी।'' इसी तरह काव्यात्मक पंक्तियों के सहारे नासिरा जी ने स्त्री के प्रेममय हृदय का सुंदर चित्र अंकित कर बताया है कि स्त्री प्रेम में सर्वस्व समर्पण को सदैव तैयार रहती है।

'पाँचवा बेटा' कहानी चार–चार बेटों के रहते हुए भी एक असहाय बूढ़ी स्त्री के दिल का दर्द बयान करती है। गाँव में अकेली ज़िन्दगी बसर करती अमतुल, उसका कच्चा घर, मोहर्रम पर इमामबाड़े व दालान की छत को बचा लेने की उसकी जद्दोजहद आदि का हृदयविदारक चित्रण कहानी में हुआ है। एक माँ की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त हुई है– ''अमतुल के चेहरे पर बेबसी के बादल घिर आए। दिल में हूक उठी कि चार पहाड़–से लड़के जनकर भी उन्हें कौन–सा सुख मिला। किसी भी लड़के को न माँ की फ़िक्र है, न दीन व मजहब की, बस नौकरी करे जा रहे हैं। महीने में भेजे मनीआर्डर क्या मेरा अकेलापन दूर कर सकते हैं? क्या इस रहमान बेलदार का दिमाग सीधा कर सकते हैं जो सौ बार बुलाने पर भी नहीं आया?'' अमतुल जहाँ एक ओर 'दोस्ती प्यार अपनी जगह दीन–ईमान अपनी जगह' जैसे ख्याल रखने वाली स्त्री है वहीं दूसरी ओर उसके भीतर छुपी ममतामयी स्त्री भी उजागर हुई है। बिना माँ के हिन्दू शिशु सुलाखी को वह अपना दूध पिलाकर पालती है। सुलाखी भी उसे माँ की तरह चाहता है। नबी की शब वाली रात मूसलाधार बारिश में सुलाखी ही अमतुल के इमामबाड़े की छत बचाकर उसकी लाज रखता है। 'दीन–ईमान खराब होने से पहले तो अमतुल गुस्सा करती है परंतु जब उसे पता चलता है कि उसके छोटे–से इमामबाड़े को बचाने की खातिर सुलाखी रात भर पानी–बिजली से मुकाबला करते हुए बुखार में तप रहा है तो उसके अंदर की ममता जाग उठती है। सुलाखी के लिए दुआ मांगती अमतुल शर्मिंदगी महसूस करते हुए सोचती है कि उसके चारों लड़के तो शहर की भीड़ में जाकर खो गए और उन्हें ढूँढने के चलते उसे होश ही नहीं रहा कि पाँचवा बेटा सुलाखी जो उसके पास है, उसे समझ पाती। वही उसका

असली बेटा है। वस्तुतः यह कहानी उन पुत्रों पर एक कटाक्ष है जो अपने बूढ़े माँ–बाप को अकेला छोड़कर अपना अलग घर बसा लेते हैं। चाहे प्रत्येक महीने वे उन्हें मनीऑर्डर भेज दें किंतु उनका अकेलापन दूर नहीं कर सकते और न ही जरूरत के वक्त बूढ़े कंधों को सहारा देने के लिए उपलब्ध हो सकते हैं। इसके साथ ही लेखिका ने बताया है कि खून के रिश्ते से बढ़कर भी एक रिश्ता है – इंसानियत का रिश्ता, दिल का रिश्ता। जहाँ सगे बेटे अपनी बूढ़ी मां को अकेला छोड़ देते हैं वहाँ पराया सुलाखी अमतुल की भवनाओं का सम्मान रखने मात्र के लिए अपनी जान पर खेलकर भी इमामबाड़े की छत को बारिश से गिरने से बचाता है।

लेखिका ने 'चार बहनें शीशमहल की' कहानी में चार लड़कियों की कथा प्रस्तुत करते हुए जहाँ एक ओर पुत्र–लालसा पर प्रहार किया है और दिखाया है कि लड़कियाँ किसी भी मायने में लड़को से कम नहीं होती हैं वहाँ चारों बहनों के साहस व पराक्रम का भी चित्रण किया है। करीमन अपने बेटे शरीफ और बहू रेशमा के घर चार–चार लड़कियाँ पैदा होने पर मायूस हो जाती है। यहाँ तक कि नई बहू तक लाने की बात कहती है किंतु शरीफ तल्ख़ लहज़े में सख्ती से मना कर देता है और नसबंदी करा लेता है। आगे चलकर चारों बेटियाँ न सिर्फ अपने हुनर से अपने दादा व पिता की मशहूर चूड़ियों की दुकान 'सुहाग स्टोर' को संभालती हैं बल्कि पढ़–लिखती भी हैं और अपने अब्बू का बेटा बनकर उनकी दुकान को चार चाँद भी लगा देती हैं। यद्यपि कहानी के अंत में सांप्रदायिक दंगों के चलते चारों बहने मौत की नींद सुला दी जाती हैं । असल में, संपूर्ण कहानी में लेखिका ने चारों बहनों की बहादुरी, हिम्मत और आत्मविश्वास का बखूबी चित्रण किया है और दिखाया है कि बेटियाँ बेटों से कम नहीं होती है।

नासिरा जी की कहानियों में स्त्री के समस्त मनोभाव शब्दों का जामा पहन साकार हो उठे हैं। स्त्री–विमर्श उनकी कहानियों के केंद्र में है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. पत्थर गली, नासिरा शर्मा
2. इब्ने मरियम, नासिरा शर्मा
3. सबीना के चालीस चोर, नासिरा शर्मा
4. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, नासिरा शर्मा
5. स्त्री केंद्रित 65 कहानियाँ, नासिरा शर्मा

Copyright © 2018, Dr. Sushma Sehrawat. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.